© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

महाकवि कालिदास की कृतियों में अलंकार और अलंकार्य

आशीष शुक्ला
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

संस्कृत महाकवियों में वाणी के चिरवाग्विलास कविकुलगुरू कालिदास कनिष्ठिकाधिष्ठित है। अन्य कवि कालिदास की कवित्व प्रतिभा का संस्पर्श तक नहीं कर सकें। उनकी कृतियाँ सहृदयहृदयसंवेध वर्णनों से युक्त है। महामनीषी मल्लिनाथसूरी ने कालिदास के अभीष्ट अभिप्रायों के प्रकाशन में स्वयं को असमर्थ बताते हुए कहा है–

''कालिदासगिरां सारं कालिदासः सरस्वती।
चतुर्मुखोऽथवा ब्रह्मा विदुर्नान्ये तु मादृशाः।।''

महाकवि कालिदास महान कवि एवं नाटककार है। वह विश्वविख्यात् काव्यस्रष्टा संस्कृत साहित्य के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानव चेतना की साहित्यिक समृद्धि के एकमात्र प्रतिनिधि कवि हैं। महाकवि कालिदास की कृतियों के अनुशीलन से हमें उनके अलंकार एवं अलंकार्य के सन्दर्भ में ज्ञात होता है। 'अलंकारोति इति अलंकारः' यह अलंकार शब्द की व्युत्पत्ति हैं इनके अनुसार शरीर को विभूषित करने वाले तत्त्व का नाम ही अलंकार है। जिस प्रकार कटक, कुण्डल आदि आभूषण शरीर को विभूषित करते है, इसीलिए अलंकार कहलाते हैं उसी प्रकार काव्य में अनुप्रास, उपमा आदि अलंकार काव्य के शरीर भूत शब्द और अर्थ को अलंकृत करते हैं अतः अलंकार कहलाते है। आचार्य मम्मट भी अलंकार को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि–

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[1]

अर्थात् रस के होते हुए भी अंग (शब्द और अर्थ) के माध्यम से काव्य का जो उपकारक तत्त्व है, उसे अलंकार कहते है। कहने का अभिप्राय है कि अलंकार 'जातुचित्' कभी कभी ही उस रस को अलंकृत करते है, हमेंशा नहीं अतः ये काव्य के अस्थिर धर्म है।

अलंकार्य उसे कहते है, जिसे अलंकारों से सजाया जाता है। वस्तुतः अलंकार्य ही काव्य की आत्मा है, जिसे आचार्यो ने रस, ध्वनि आदि के रूप में स्वीकार किया है। आचार्यों ने काव्यगुणों को अलंकार्य अर्थात् अंगी से नित्य सम्बद्ध स्वीकार किया है।

वस्तुतः अलंकार अलंकार्य का केवल उत्कर्षाधायक तत्त्व है, स्वरूपधायक अथवा जीवनधायक तत्त्व नहीं। अलंकारों को काव्य का अस्थिर धर्म माना जाता है।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश में अनेकशः इस सन्दर्भ में अपने विचार प्रकट किए है। कामासक्त नायक नायिका के सदृश समुद्र अपनी प्रेयसी के साथ विविध श्रृंगार क्रीड़ाए करता है, इस भाव का वर्णन करते हुए रघुवंश में श्रीराम सीता से कह रहे है कि 'यह समुद्र अपनी रमणियों के साथ विलक्षण योग व्यापार करने वाला है। अपने उर्मिरूपी अधरों को अर्पित करने में कुशल यह चुम्बेच्छुक मुख प्रदान करने वाली नदियों का अधरपान करता है। तथा उन्हें भी अपना अधरपान करने देता है।[2']

अर्थात् विलक्षण रीति से पत्नीरमण में दक्ष और अपने तरंग रूप अधरोष्ठ को परिचुम्बनार्थ देने में कुशल और यह सागर अपना मुख देने में स्वभावत' चंचल और लज्जारहित नदी रूपी अपनी पत्नियों का अधरपान करता है।

कालिदास सुकुमार और कोमल मनोरम भावों के चित्रांकन में सिद्ध है। उनके मनोरम भाव सहृदय को अकस्मात ही अपनी ओर के रघुवंश में प्रसाद गुणोपेत ललित एवं परिस्कृत शैली का प्रयोग मिलता है माधुर्य गुण संश्लिष्ट उनका प्रसाद गुण पाठकों के चित्त के आह्लादित करता है।

महाकवि कालिदास की भाषा अलंकारो से अलंकृत होकर मधुर झंकार करती हुई सी प्रतीत होती है, जिसका सहृदय पाठक अपने स्तर के अनुसार रसास्वादन करते है।[3] वाल्मीकि आश्रम में सीता के करूण क्रन्दन से 'वन्य' पशुओं की संवेदना किस प्रकार से मुखरित होने लगती है।[4] कालिदास ने सरल भाषा के द्वारा मार्मिक चित्रांकन किया है। कवि कालिदास का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे जहाँ जिस भाव को प्रस्तुत करना चाहते हैं, मानों वहाँ पर उसी रूप में जाकर प्रस्तुत हो जाती हैं। उनके कथोपकथन छोटे, रसीले एवं चटकीले हैं, जिन्हें सुनकर पाठकों का मन तरंगित हो उठता है।

महाकवि कालिदास रघुवंश में कहते हैं कि वर्षा ऋतु का उद्दीपक वातावरण वियोगी को अत्यधिक पीड़ा देता है। इसी सन्दर्भ में राम सीता से कहते हैं कि–

''उस समय वर्षा के कारण पोखरों में से उठी हुई सोंधी गन्ध, अधखिली मंजरियों वाले कदम्ब के पुष्प और भौंरो के मनोहर स्वर तुम्हारें न रहने से मुझे बड़े अखरें।''[5]

इसी प्रकार कोमल मनोरम भावों को अभिव्यक्त करने वाले अनेक पद्य द्रष्टव्य हैं। क्या ही कोमल भावों की अभिव्यंजना है। शारभंग ऋषि के आश्रम के वृक्ष उनके पुत्र के सदृश अतिथि सत्कार का दायित्व निभा रहे हैं।[6]

इस प्रकार कालिदास किसी भाव के चित्रण करते समय स्पष्ट पदावली का प्रयोग नहीं करते है। अपितु वे व्यंजना व्यापार के द्वारा उस कवि की ओर संकेत करते हैं। व्यंजना से प्रेरित उनका यह संकेत श्रोता पर सम्मोहन सदृश कार्य करता है और उसे स्तम्भित सा कर देता है। उनका यह कवि सहृदयता से ओत–प्रोत रहता है। उनकी इस ध्वन्यात्मक वृत्ति को हृदयंगम करा लेना सहृदय व्यक्ति की सहृदयता पर आधारित है। आप जितने ही सदस्य बनकर उनके हृदय प्रधान काव्य सागर में डुबकी लगाऐंगे उतने ही रत्न पायेंगे। अतः उनकी कृतियों को जितनी ही बार गहराई के साथ पढ़ा जाएगा, उतनी ही बार अभिनव आनन्द की अनुभूति होगी।

कालिदास की शैली में यद्यपि प्रसाद तथा माधुर्य गुणों की ही प्रधानता देखी जाती है किन्तु यत्र तत्र ओजगुण के भी दर्शन हो जाते हैं। उनके माधुर्यगुणोपेत अग्रलिखित पद्य द्रष्टव्य हैं–[7] ''तुम्हारे वियोग में मैं ऐसा पागल हो चला

था कि एक दिन स्तन के समान गुच्छोवाली इस पतली अशोक लता को मैं यही समझकर गले लगाने बढ़ चला था कि तुम ही हो। पर जैसे ही मैं उसे गले लगाने चला वैसे ही मेरा यह पागलपन देखकर रोते हुए लक्ष्मण ने मुझे रोक दिया।''

यद्यपि महाकवि कालिदास ने अन्य काव्यशास्त्रीय सन्दर्भों के सदृश अलंकार और अलंकार्य का स्पष्टरूप से अपनी कृतियों में विभाजन तो नहीं किया है, तथापि उनके काव्यों में कतिपय श्लोंको के अनुशीलन से हमें उनकी अलंकार एवं अलंकार्य विषयक अवधारणा का स्पष्ट बोध होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[1] काव्यप्रकाश–(8/67)

[2] मुखार्पणेषु प्रकृति प्रगल्भाः स्वयं तरंगधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययाते च सिन्धुः। रघुवंश– (13/9)

[3] पयोधरैः पुण्य जनांनानां निविष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।।

[4] नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृंग दर्भानुपाताणि जहुईरिण्यः।
तस्याः प्रपन्नें समदुःखभावमत्यन्तसीद्रुदितं वनेऽपि।।– रघुवंश (14/69)

[5] गन्धश्च धाराहतपल्लवानां कादम्बमर्घोद्गतके सरंच।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवु –
र्यस्मिन्नसध्यानि विना त्वया में –(रघुवंश–13/27)

[6] छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेष्वमीषु।
तस्यातिथीनामधुनासपर्या स्थिता सुपुत्रोष्विव पादपेषु।।– (रघुवंश– 13/46)

[7] इमां तटाशोकलतां च तन्वीं स्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्र।
त्वत्प्राप्तिबुद्धया परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः। (रघुवंश– 13/32)